Chapter-9

नवम् अध्याय- उपसंहार

(समकालीन कथाकारों में वर्मा जी का स्थान एवं उनकी उपलब्धि)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के पिछले आठ अध्यायों में वर्मा जी के सम्पूर्ण कथा-साहित्य का विस्तृत अनुशीलन किया गया है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की उत्तरावस्था अर्थात् 1928 ई० में वर्मा जी का प्रथम उपन्यास प्रकाशित हुआ था और आज तक वह अविरतरूप में साहित्य-सृजन में लगे हैं। लगभग अर्द्धशताब्दी के सृजन-काल में वर्मा जी ने छोटे - बड़े चौदह उपन्यासों एवं पचास-साठ कहानियों के द्वारा हिन्दी कथा-साहित्य की अक्षय-निधि में अपना योगदान किया है। उनकी इस प्रदेन को देखकर हमारे सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हिन्दी कथा-साहित्य में वर्मा जी का क्या स्थान है एवं अपने समकालीन कथाकारों के समकक्ष उनकी उपलब्धि क्या है ? प्रस्तुत शोध-प्रबंध के सिंहावलोकन के आधार पर हम इन प्रश्नों का समाधान प्राप्त करना चाहेंगे।

वर्मा जी के लेखन का आरम्भ, विकास तथा उनके उपन्यासों में विषय की विविधता के कारण विभिन्न आलोचक उन्हें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखते रहे हैं। कुछ समीक्षक उनकी गणना प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में करते हैं तो कुछ प्रेमचन्दोत्तर-युगीन उपन्यासकारों में। किसी ने उन्हें सामाजिक यथार्थ का प्रणेता माना तो किसी ने उनके उपन्यासों में व्यक्तिवादी तत्वों का संधान किया है और किसी ने स्वच्छन्दतावादी उपन्यासों के गुण भी उनके उपन्यासों में खोज लिए हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि वर्मा जी के उपन्यासों में वर्ण्य-विषय एवं रचना-पद्धति का ऐसा वैशिष्ट्य विद्यमान है कि उनकी कथाकृतियों में से विविध रंग फूटते हैं, जो पृथक्-पृथक ढंग से लोगों को प्रभावित करते हैं।

वस्तुत: वर्मा जी का उपन्यास-लेखन का आरम्भ ही ऐसे समय से होता है, जब हिन्दी उपन्यास परिवर्तन की कगार पर खड़ा था। प्रेमचन्दोत्तर युग में जिन नवीन प्रवृत्तियों का विकास मिलता है, उनका सूत्रपात प्रेमचन्द के युग से ही हो गया था। जैनेन्द्र के `परख` और `सुनीता` आदि उपन्यासों के द्वारा मानव-मन के सूक्ष्म रहस्यों को चित्रित करने के नवीन शिल्प का प्रादुर्भाव हुआ और इसके पश्चात् उपन्यास में बहिरंग जगत् के लिए विशेष मोह नहीं रह गया। इसी प्रकार सामाजिक बन्धनों एवं वर्जनाओं के प्रति विद्रोह तथा नवीन जीवन-मूल्यों की प्रस्थापना के लिए आकांक्षा का स्वर प्रेमचन्द की अंतिम कृतियों से ही मुखर होने लगा था, व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों की माँग भी `प्रसाद` ने `कंकाल` के माध्यम से प्रस्तुत कर दी थी। वर्मा जी ने इन सबसे प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु विषय-चयन में अपनी मौलिक कल्पना का परिचय दिया।

वर्मा जी ने उच्च वर्ग, उच्च मध्यवर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग सभी के जन-जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया किन्तु उसमें प्रमुखता उच्च वर्ग एवं उच्च मध्य वर्ग की ही रही और उसमें भी विशेष आग्रह पात्रों की बौद्धिकता के लिए रहा। उनके उपन्यासों में समाज और देशकाल के यथातथ्य चित्र प्रस्तुत किए गए, साथ ही व्यक्ति के मन की थाह लेने का प्रयास भी किया गया। समाज के कुरूप यथार्थ पर व्यंग्य करते हुए व्यक्ति के अहं को असीमत्व प्रदान करने की आकांक्षा व्यक्त की गयी। वर्मा जी के 'चित्रलेखा', 'रेखा', 'सीधी सच्ची बातें' आदि उपन्यासों में व्यक्तिवादी स्वर अपेक्षाकृत अधिक मुखर रहा है, वहीं 'भूले बिसरे चित्र', 'थके पाँव' एवं 'आखिरी दाँव' आदि उपन्यास सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन करते हैं। फिर भी वर्मा जी के सभी उपन्यासों को सामाजिक और व्यक्तिवादी उपन्यासों के पृथक-पृथक विभाग में आबंटित कर पाना अत्यंत दुष्कर कार्य है, क्योंकि उनके उपन्यासों में व्यक्ति और समाज इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उनके उपन्यास में एक और बीजगुप्त है, जो मानता है कि 'व्यक्तित्व जीवन में प्रधान है और व्यक्ति से ही समुदाय बनता है।'[1] वहीं रत्नाम्बर महाप्रभु भी हैं जो कहते हैं-"अच्छी वस्तु वही है, जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो।"[2] यह 'दूसरा' ही समाज है। अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व को कायम रखने के लिए सतत् संघर्षशील रहनेवाला जगतप्रकाश भी समाज को छोड़ नहीं पाता, उसे भूल नहीं पाता -"व्यक्ति से समाज बनता है - यह सत्य है, लेकिन समाज में ही तो व्यक्ति का अस्तित्व है, व्यक्ति समाज का अविच्छिन्न भाग है। जो व्यक्ति समाज से छिटक जाता है, वह अपराधी होता है, यह या वह पागल होता है। हरेक वैयक्तिक प्रेरणा का एक सामाजिक पहलू होना अनिवार्य है, इस वैयक्तिक प्रेरणा का एक सामाजिक पहलू होना अनिवार्य है, इस वैयक्तिक प्रेरणा का सामाजिक प्रेरणा में विलयन ही मानव-विकास है।"[3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों में निजी व्यक्तित्व युक्त पात्रों को पर्याप्त महत्व मिला है, किन्तु उनका व्यक्ति समाज सापेक्ष है, समाज निरपेक्ष नहीं। अत: वर्मा जी के उपन्यासों को व्यक्तिवादी कहने की अपेक्षा सामाजिक उपन्यास कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। एक समीक्षक ने

1- चित्रलेखा- पृ० 12

2 ,, पृ० 14

3- सीधी सच्ची बातें- पृ० 381

लिखा है -` व्यक्तिवादी उपन्यासकार समाज-निरपेक्ष व्यक्तिवादी मानव की प्रतिष्ठा करता है किन्तु व्यक्तिपरक उपन्यासकार समाज सापेक्ष व्यक्ति मानव को अपने उपन्यास में प्रतिष्ठित करता है। ---- वर्मा जी व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं और न सामाजिक, न उनके पात्र व्यक्तिवादी हैं और न सामाजिक। समाज के परिपार्श्व में उनके पात्रों ने व्यक्ति-मूल्यों की स्थापना की है और समाज की पृष्ठभूमि में व्यक्तिपरक उद्देश्यों की स्थापना के कारण, वर्मा जी व्यक्तिपरक उपन्यासकार हैं।`[1] इस कथन से अंशत: सहमत हुआ जा सकता है, किन्तु इसकी अपेक्षा हमें एक अन्य समीक्षक का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है, जिन्होंने वर्मा जी को सामाजिक उपन्यासकार मानते हुए लिखा है -` वर्मा जी के पात्र व्यक्तिवादी उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं। उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ व्यक्तित्वों का भी निर्माण हुआ है, व्यक्तित्व में टक्कर हुई है और व्यक्ति की समस्या ने समाज की समस्या का रूप धारण कर लिया है, इसलिए व्यक्तिवादी पात्र रखते हुए भी उनके उपन्यास व्यक्तिवादी नहीं हैं और न वर्मा जी व्यक्तिवादी कलाकार ही। पाप पुण्य, प्रेम और विवाह, विभिन्न राजनीतिक मतमतान्तरों के संघर्ष, अर्थ और नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्ति की अपनी समस्यायें होते हुए भी समाज की समस्यायें हैं और उनका हल भी व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से न दिया जाकर सामाजिक दृष्टिकोण से ही दिया है।`[2] यह कथन अक्षरश: सत्य है। वर्मा जी के उपन्यासों के पात्र व्यक्ति-स्वातंत्र्य में विश्वास रखने वाले हैं, इसलिए उन्होंने समाज की विकृतियों से टक्कर लेने का पूरा प्रयास किया है, किन्तु देश और समाज के व्यापक परिवेश से कटकर `स्व` में केन्द्रित रह पाना उन्हें कभी नहीं भाया। वर्मा जी के व्यक्तित्व-निरूपण के प्रसंग में लक्ष्य कर चुके हैं कि वर्मा जी स्वयं अहं के विकास में विश्वास करते हैं, किन्तु अन्य बुद्धिजीवियों की भाँति स्वकेन्द्रित होना उन्हें कभी रुचिकर प्रतीत नहीं होता। उनके निजी जीवन का पूर्ण प्रतिबिम्बन उनके उपन्यासों में हुआ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्मा जी के उपन्यास सामाजिक हैं। और उनके उपन्यासों का समाज ऐसा है, जिसमें `व्यक्ति` का पर्याप्त महत्व है। उनके उपन्यासों में `व्यक्ति` के हित में समाज की गर्हित परम्पराओं को बदलने की आकांक्षा व्यक्त हुई है, समाज की कुरूपताओं के प्रति आक्रोश प्रकट हुआ है, किन्तु समाज की सद्-व्यवस्थाओं एवं नियमों के प्रति एक आस्था एवं निष्ठा भी प्रच्छन्नरूप से विद्यमान रही है। वर्मा जी के मन की अतल गहराइयों में छिपी आस्था उनके कथा-साहित्य में भी यथार्थ,

---

1- हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन- डा० महावीरमल लोढ़ा, पृ० 143-144

2- आलोचना 20, भगवतीचरण वर्मा के सामाजिक उपन्यास-अनन्त चतुर्वेदी-पृ० 50

विद्रोह, आक्रोश एवं व्यंग्य के बीच कभी-कभी आदर्श का स्वर छेड़ बैठी है।

सतही तौर पर देखने से वर्मा जी के कथा-साहित्य में यथार्थ अंकन की प्रवृत्ति ही सर्वाग्रणी परिलक्षित होती है, और आदर्श के प्रति कोई मोह नहीं दिखता। किन्तु यह सत्य नहीं है। वर्मा जी ने समाज का यथार्थ अंकन अवश्य किया है। यहाँ तक कि एक
में वे नग्न यथार्थ का चित्रण करने में भी नहीं चूके है और इसलिए
आलोचिका ने उन्हें नग्न यथार्थ का प्रणेता भी कह दिया है - 'इसकी अभिव्यक्ति कभी-कभी वे हमें उग्र की श्रेणी के कलाकार लगने लगते हैं, किन्तु उनका नग्न यथार्थ 'उग्र' की भाँति उत्तेजनापूर्ण नहीं।'[1] अतः यह सत्य है कि वर्मा जी यथार्थवादी है, किन्तु उनमें आदर्श के प्रति एक लगाव अवश्य छिपा है, जो कभी-कभी अपना सिर उठाने लगता है, 'भूले बिसरे चित्र' के रिपुदमनसिंह के शब्दों में यही आदर्शवाद मुखरित हुआ है - 'आज मैंने अपनी आँखों से देखा कि वह स्त्री सतवंती----- तुमने उसे भयानक रूप से नीचे गिरा दिया है। तुम्हारे गिलास की झूठी व्हिस्की अपने पति के सामने ही पीते मैंने देखा है उसे। और मुझे उस समय ऐसा लगा कि तुम्हारे कहने से वह अपने पति की हत्या कर सकती है। तो एकाएक मेरे सामने तुम्हारी जगह शिवप्रताप की शक्ल आ गई। यह दुनिया शिवप्रतापों से भरी है, जिनके इशारों पर स्त्रियाँ गिरती हैं, जिनके प्रभाव से परिवार टूटते हैं, जिनके कहने से हत्यायें होती हैं। मैं चाहता हूँ इन शिवप्रतापों को चुन-चुनकर दुनिया से हटा दिया जाए। सुना गंगाप्रसाद, ये शिवप्रताप मानवता के अभिशाप हैं, ये मनुष्य की योनि में साक्षात् पिशाच हैं।'[2] इस प्रकार के पुष्कल उद्धरण वर्मा जी के उपन्यास और कहानियों से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यह अवश्य है कि वर्मा जी के उपन्यासों में प्रेमचन्द की भाँति आदर्श के प्रति अत्यधिक आग्रह नहीं दिखता, परन्तु बुद्धि और विवेक के तर्क-वितर्क के उपरान्त कई बार आदर्श का पलड़ा यथार्थ की अपेक्षा भारी पड़ गया है। मानवता के ह्रास, समाज के वर्ग-विशेष के शोषण, सामाजिक वैषम्य एवं उच्छृंखलता के प्रति जो एक आह एवं पीड़ा वर्मा जी के उपन्यासों में व्यक्त हुई है, वही आदर्श के प्रति वर्मा जी के झुकाव का प्रकाशन कर देती है। इसी प्रकार समाज के विभिन्न अंशों एवं कुरीतियों के प्रति जो व्यंग्य वर्मा जी के कथा-साहित्य में मिलता है, वह भी उनकी आदर्श-प्रियता का परिचायक है। फिर भी वर्मा जी को प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' एवं भगवतीप्रसाद वाजपेयी की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यासकारों की कोटि में नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि वर्मा जी

1- भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा' से 'सबहिं नचावत राम गोसाई' तक - डा० कुसुम वार्ष्णेय- पृ० 182

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 306

के उपन्यासों में घटनाओं की अन्तिम परिणति आदर्श में दिखलाने की प्रवृत्ति नहीं मिलती और न वैसा आग्रह मिलता है। पात्रों की परिस्थितियों एवं क्रिया-कलापों के अनुसार अकृत्रिमरूप से, आदर्श और यथार्थ में से जो उचित ठहरा है, उसे ही वर्मा जी ने स्वीकार किया है। वर्मा जी का आदर्श ऐसा है, जो समाज के बाधा-बन्धनों की अपेक्षा मन की शुद्धता एवं आन्तरिक अनुशासन को अधिक महत्व प्रदान करता है। वर्मा जी ने समाज का यथार्थ चित्रण करने के लिए प्रकृतवादी एवं अतिशय यथार्थवादी दृष्टिकोण भी नहीं अपनाया है, अत: वह चतुरसेन शास्त्री एवं 'उग्र' आदि उपन्यासकारों से नितांत भिन्न हैं। वह 'सेक्स' के नग्न प्रदर्शन को मानसिक विकृति का द्योतक'[1] मानते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी वस्तुत: यथार्थवादी कलाकार हैं, परन्तु खुले समाज में जो गोपनीय है, उसे उघाड़कर रखने के चेष्टा वर्मा जी में नहीं मिलती। इसके साथ-साथ उनके कथा-साहित्य में कहीं-कहीं आदर्श के प्रति उनका कुछ झुकाव भी अभिव्यंजित हुआ है।

वर्ण्य-विषयवस्तु की दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द का कथा-साहित्य अधिक व्यापक है। जीवन के प्रत्येक कोने को उन्होंने झाँकने का प्रयास किया है। वर्मा जी का साहित्य-क्षेत्र मुख्यत: उच्चवर्ग एवं उच्च मध्यवर्ग तक सीमित रहा है। ऐसा नहीं है कि उन्होंने ग्रामीण जीवन एवं निम्नवर्ग को छुआ भी नहीं है। उनके 'आखिरी दाँव', 'भूले बिसरे चित्र' एवं 'सीधी सच्ची बातें' आदि उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की झलक मिल जाती है और 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में ग्रामीण-जीवन की कृषक-जमींदार संघर्ष-समस्या का सफल चित्रण भी हुआ है, किन्तु मुख्यत: वर्मा जी शहरी जीवन से अधिक जुड़े दिखते हैं। इसीलिए उनके उपन्यास-कहानियों में रेस्ट्रां, होटल, शराब, क्लब, वेश्या अथवा सुन्दरी युवतियों, बड़े-बड़े पूँजीपतियों, जमींदारों, नेताओं एवं अफसरों की भरमार दिखती है। इस शहरी जीवन को देखने की जैसी सूक्ष्म दृष्टि वर्मा जी में है, वैसी प्रेमचन्द में नहीं है। प्राय: वर्मा जी पर यह आरोप लगाया जाता है कि वर्मा जी ने शहर में रहनेवाले एक विशिष्ट वर्ग तक ही स्वयं को सीमित रखा है, सर्वहारा वर्ग के लिए उनमें वह मानवीय संवेदना व्यक्त नहीं हुई है जो प्रेमचन्द, यशपाल एवं रांगेय राघव प्रभृति लेखकों में मिलती है। इस सम्बंध में हमारा मत यह है कि वर्मा जी ने केवल उसी जन-जीवन को अपने उपन्यासों एवं कहानियों में चित्रित किया है, जिसकी नस-नस से वे परिचित रहे हैं, जिसका चप्पा-चप्पा जिन्होंने देखा डाला है।

1- नवभारत टाइम्स (बम्बई संस्करण) गुरुवार 7 जून, 1973

इसीलिए उनका चित्रण इतना सजीव एवं यथार्थ बन पड़ा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि वर्मा जी के कथा-साहित्य में उनकी उपस्थिति प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सदैव अनुभव की जा सकती है। अत: हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि वर्मा जी ने भारतीय समाज के जिस अंग को छुआ है, उसे पूर्ण संवेदना, सहानुभूति एवं तन्मयता से चित्रित किया है, यही उनके उपन्यासों की सार्थकता है, उनकी उपलब्धि है, न कि अक्षमता। एक समीक्षक ने उचित ही लिखा है -"उनके चित्रण का कैनवास प्रेमचन्द जैसा व्यापक तो नहीं है, पर मध्य वर्ग के विविध सम्बन्धों के तनावों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं के बीच ही अपने पात्रों एवं समस्याओं को उन्होंने उभारा है।"[1] इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ ऐसे अमर कलाकार होते हैं, जो कल्पना एवं यथार्थ के समन्वय से ऐसी दिव्य-दृष्टि का विकास अपने अन्दर कर लेते हैं कि सम्पूर्ण मानवता का प्रत्येक पृष्ठ उनके समक्ष उघड़ जाता है, वैसी दिव्य-दृष्टि वर्मा जी में नहीं है, यह तथ्य है। वर्मा जी ने अपने चतुर्दिक फैले जिस समाज के यथार्थ को स्वयं भोगा है, उसी को उन्होंने अपने साहित्य में साकार किया है और खूब किया है, इसमें सन्देह नहीं।

वर्मा जी को 'चित्रलेखा' के द्वारा ही सर्वाधिक ख्याति मिली है और आज भी वह वर्मा जी की कृतियों में ही नहीं, सम्पूर्ण आधुनिक हिन्दी साहित्य की अनुपम एवं बेजोड़ कृति है। 'पतन' और 'चित्रलेखा' ऐतिहासिक वातावरण को आधार बनाकर लिखे गये हैं, किन्तु वे ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में नहीं आ सकते ; क्योंकि उनकी कथा पूर्णरूपेण काल्पनिक है। इस दृष्टि ये दोनों उपन्यास वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों एवं यशपाल की 'दिव्या' से नितांत भिन्न हैं। 'चित्रलेखा' और वृन्दावनलाल वर्मा की विराटा की पद्मिनी' में अवश्य कुछ साम्य है। इसके विपरीत भगवतीचरण वर्मा के कुछ अन्य उपन्यासों का ऐतिहासिक दृष्टि से पर्याप्त महत्व है। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' 'भूले बिसरे चित्र', 'सीधी सच्ची बातें' और 'प्रश्न और मरीचिका' के रूप में भारतीय समाज एवं राजनीति का एक क्रमबद्ध कथात्मक इतिहास प्रस्तुत करना उनकी महती उपलब्धि है। सन् 1885 ई० से लेकर सन् 1963 तक के भारत की विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों, जीवन-मूल्यों के परिवर्तनों एवं जड़बद्ध विकृतियों का जीवंत चित्र जिसप्रकार वर्मा ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है, उसका विस्तृत विवेचन इस शोध-प्रबंध के तृतीय अध्याय में किया गया है। यों प्रेमचन्द के 'गोदान', यशपाल के 'झूठा-सच' एवं अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र' में भी व्यापक कैनवास

1- भूले बिसरे चित्र(संक्षिप्त संस्करण) की भूमिका- डा० देवीशंकर अवस्थी, पृ० 13

एवं परिवेश के आधार पर समसामयिक जीवन को सजीवता से अंकित किया गया है, किन्तु कई उपन्यासों की श्रृंखला में विशाल कालावधि का क्रमबद्ध इतिहास रोचक कथा के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास सर्वप्रथम वर्मा जी ने ही किया है। इसे, हिन्दी कथा-साहित्य को, वर्मा जी की महत्वपूर्ण देन के रूप में मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। डा० धर्मवीर भारती का मूल्यांकन सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है ----'भगवतीचरण वर्मा, मेरी दृष्टि में, हिन्दी के अकेले कथाकार हैं जिन्होंने ---- अपने उपन्यासों के माध्यम से इस पूरी शताब्दी में भारतीय सामाजिक ढाँचे के बाहरी और अन्दरूनी ठहरावों और बदलावों का एक क्रमबद्ध चित्रण किया है, और न केवल सामाजिक और पारिवारिक टूटते-बनते सम्बन्धों का सजीव चित्रण किया है तथा आंतरिक भावनात्मक धरातल की उथल-पुथल खूबी से आँकी है, वरन् बाहरी तथाकथित ऐतिहासिक घटनाओं के क्रम को भी उतनी ही खूबी से निभाते चले गये हैं। यह तो कमजोरी हमारी वर्तमान हिन्दी समीक्षा की है कि जो अपने ओछे आग्रहों, या दम्भी शास्त्रीयता या झूठी सैद्धांतिकता की ओट में अपने खोखलेपन को छिपाने में ही जी-जान से लगी हुई है, वरना किसी और भाषा में यदि 'भूले बिसरे चित्र', 'सीधी सच्ची बातें', और 'प्रश्न और मरीचिका' यह उपन्यासत्रयी प्रकाशित होती तो भगवतीबाबू की इस असाध्य, अर्थवान ऐतिहासिक कथोपलब्धि का महत्व पहचाना जाता है'[1]

समाज के यथार्थ चित्रण में वर्मा जी की दृष्टि यथासम्भव निरपेक्ष रही है। उनके उपन्यासों के विभिन्न मतों को देखकर कभी उनके प्रगतिवादी, तो कभी प्रतिक्रियावादी होने का भ्रम हो सकता है, किन्तु विभिन्न पात्रों के अनुकूल उनके औचित्य को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये विभिन्न मत-मतान्तर वर्मा जी के दृष्टिकोण का प्रकाशन न करके समाज की पृथक-पृथक मनोवृत्तियों का उदघाटन करते हैं। फिर भी वर्मा जी के पात्र सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं का जिस प्रकार कटु शब्दों में विरोध करते हैं, उन पर जोरदार प्रहार करते हैं, उससे वर्मा जी का कुछ अधिक झुकाव प्रगतिवाद की ओर दिखाई पड़ता है, इसीलिए उनके उपन्यासों में अनास्था और नास्तिकता झलकने लगती है। वर्मा जी के समकालीन कथाकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी में भी प्रगतिवादी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है, किन्तु वे मूलत: भारत के अतीत की धर्म-प्रवृत्ति से अनुप्राणित हैं, और आदर्श के प्रति भी उनमें

1- अर्पित मेरी भावना- भूमिका-डा० धर्मवीर भारती-(प्रकाशन समाचार-अक्तूबर 1974, पृ० 12 से उद्धृत)

पर्याप्त मोह है । फणीश्वर नाथ `रेणु` भी वर्मा जी की भाँति यथार्थवादी कलाकार हैं, परन्तु उनके यथार्थवाद में अनास्था या नकारात्मकता नहीं है जो वर्मा जी के उपन्यासों में अभी तक विद्यमान है ।

इसी अनास्था के कारण वर्मा जी में क्रमशः व्यंग्य प्रवृत्ति प्रखर होती गयी है । उनकी यह व्यंग्य-वृत्ति उनके प्रत्येक उपन्यास में किसी-न-किसी रूप में मिल जाती है । व्यंग्य की प्रेरणा संभवतः वर्मा जी ने प्रेमचन्द से ही ली है क्योंकि उनके उपन्यासों में प्रेमचन्द की भाँति व्यंग्य के विविध प्रयोग मिलते हैं । जहाँ `अश्क` और अमृतलाल नागर के व्यंग्य में अधिकांशतः चुहल, विनोद और उपहास का स्वर अधिक मुखर है और यशपाल के व्यंग्य में गम्भीरता रहती है, वहीं वर्मा जी के उपन्यासों में अवसर एवं पात्र के अनुकूल व्यंग्य का रूप बदलता रहता है । कहीं पात्रों के क्रिया-कलाप, वेशभूषा एवं कथन ही उस पर व्यंग्य करते प्रतीत होते हैं और पाठक उसके कारनामों को देख हँसने के लिए विवश हो जाता है, तो कहीं लेखक की टिप्पणी और पात्रों के कथन के द्वारा किसी अन्य पात्र पर व्यंग्य किए गए हैं । कहीं प्रच्छन्न रूप से पात्रों के माध्यम से सामाजिक विकृतियों की मीठी चुटकी ली गई है तो कहीं-कहीं समाज के कलंक-रूप शोषक तत्वों पर कठोर प्रहार किए गए हैं । वर्मा जी की व्यंग्य-वृत्ति का विश्लेषण करते हुए एक समीक्षक ने लिखा है -`उनका, समाज के पीड़कों के प्रति, व्यंग्य, हमारे मन में पीड़ितों के प्रति करुणा नहीं जगाता वरन् हम असमर्थ, असहाय जनों की असमर्थता के प्रति मानो खीज से भर जाते हैं । वर्मा जी जीवन के विडम्बनाओं को देखकर, क्लांत हो पराजित अनुभव करते हैं और अपनी अनास्था के कारण खीज और कटुता से भर उठते हैं । इसीलिए, वे अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द की भाँति पाठक को न रचनात्मक दिशा प्रदान करते हैं और न उसमें जीवन की जीर्ण-शीर्ण अवस्था के प्रति आक्रोश एवं ~~विद्रोह प्रवृत्ति~~ विद्रोह का भाव उत्पन्न कर पाते हैं ।`[1] यह कथन पूर्णरूपेण सत्य प्रतीत नहीं होता । ऐसा नहीं कि वर्मा जी के उपन्यासों में उपर्युक्त खीज, कटुता एवं क्लांति की स्थिति है ही नहीं । उनके परवर्ती उपन्यासों में, `सबहिं नचावत राम गोसाईं` को छोड़कर निराशा एवं अवसाद का स्वर काफी गहरा गया है, किन्तु उनके व्यंग्य में व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की भावना भर देने की अपार क्षमता है । उनकी व्यंग्य-क्षमता का उत्कृष्ट निदर्शन `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में मिलता है । व्यंग्य के साथ कथारस का इतना सुन्दर समन्वय संभवतः दुर्लभ है ।

1- हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - डॉ० शशिभूषण सिंहल, पृ० 87

कथा-संगठन की दृष्टि से वर्मा जी प्रेमचन्द से बहुत भिन्न नहीं हैं। वर्मा जी के कथा-साहित्य में वही किस्सागोई एवं ठोस कथानक देने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है जो प्रेमचन्द जी में थी, उनके अधिकांश उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली की ही प्रधानता रही है, आवश्यकतानुसार अभिनयात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली का उपयोग भी हुआ है, किन्तु उपन्यासों के ढाँचे का निर्माण अधिकांशत: वर्णनात्मक शैली में ही हुआ है। प्रेमचन्द की ही भाँति उनकी वर्णनात्मक शैली में इतनी रोचकता एवं प्रवहमयता है कि उपन्यासों के कतिपय दोष उसमें छिप जाते हैं। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने वर्मा जी की कहानियों की चर्चा करते हुए लिखा है -"उनमें किस्सा कहने की प्रतिभा खूब है। उनकी कहानियों में ठोस कथानक पाया जाता है और उसका संगुफन वे बड़े ही कुशल ढंग से करते हैं, जिससे कहानियों में नाटकीयता की प्रवृत्ति अधिक आ जाती है। कथा-संगठन की दृष्टि से भगवतीबाबू ने रोमाण्टिक यथार्थवाद का आश्रय लेते हुए उसे प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में सिद्धहस्तता प्रकट की है। उनकी अनेक कहानियाँ वर्णनात्मक शैली में हैं जिनमें प्रेमचन्द की कहानियों की भाँति स्थूलत्व है।"[1] वर्मा जी के उपन्यासों की स्थिति भी बहुत-कुछ यही है। वास्तविकता तो यह है कि प्रेमचन्द परवर्ती कुछ मनोविश्लेषणवादी कथाकारों को छोड़कर वर्मा जी के समकालीन अधिकांश उपन्यासकारों की प्रवृत्ति कुछ फेर-बदल से प्रेमचन्द के अनुगामी बने रहने की है। व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर प्रेमचन्द के शिल्प में कुछ संशोधन एवं परिष्कार कर लिए गए हैं। श्री महेन्द्र चतुर्वेदी के मतानुसार भगवतीचरण वर्मा, यशपाल तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की शिल्पविधि प्रेमचन्दीय शिल्प की चरम परिणति है, किन्तु विषय-निर्वाचन [illegible] मौलिक।[2] हमारे विचार से तो अमृतलाल नागर भी शिल्प की दृष्टि से उपर्युक्त कथाकारों से बहुत भिन्न नहीं हैं। [illegible] किन्तु वर्मा जी किस्सागोई की दृष्टि से प्रेमचन्द के अधिक निकट हैं। वर्मा जी के सम्बंध में डॉ० देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है -"कथा कहने की रोचकता भी उनमें प्रेमचन्द जैसी ही थी - अपने समकालीन उपन्यासकारों से अधिक।"[3] रोचकता अथवा कथारस वर्मा जी के कथा-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है, इसमें कोई संदेह नहीं और वे प्रेमचन्द से पूर्णरूपेण अनुप्राणित हैं। यह अवश्य है कि वर्मा जी के प्रतिभाशाली कलाकार ने प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया है, उसका उत्तरोत्तर विकास किया है। कथा कहने की कला में वर्मा जी की हास्य-व्यंग्य शैली से चार चाँद लग गये हैं।

1- आधुनिक कहानी का परिपार्श्व - डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० 66
2- हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण- महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० 116
3- भूले बिसरे चित्र (संक्षिप्त संस्करण) की भूमिका-डॉ० देवीशंकर अवस्थी, पृ० 13

वर्मा जी के उपन्यासों और कहानियों की चरित्र-सृष्टि के विस्तृत विवेचन के निष्कर्ष के रूप में हम लक्ष्य कर चुके हैं कि वर्मा जी के कथा-साहित्य में ऐसे पात्रों की संख्या ही अधिक है, जो वर्गगत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हुए भी व्यक्तिगत विशेषताओं से मंडित हैं। प्रेमचन्द के पात्रों के सम्बंध में आलोचकों में एक भ्रांत धारणा बन गयी है कि उनके पात्र टाइप-मात्र हैं, इसके विपरीत वर्मा जी के पात्रों को कुछ आलोचक विशुद्ध व्यक्तिवादी मान बैठे हैं। ये दोनों ही धारणाएँ भ्रांतिपूर्ण हैं और तथ्य के एक पक्ष का ही उद्घाटन करती हैं। प्रेमचन्द के होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, निर्मला और मन्साराम, सूरदास, रमन रमानाथ और जालपा आदि अनेक पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि होते हुए भी वैयक्तिक स्पन्दन से पूर्ण हैं। अपने सबल व्यक्तित्व के कारण ही वे अमर हो सके हैं। इसी प्रकार वर्मा जी के उपन्यासों में `चित्रलेखा` के कुछ प्रमुख पात्रों को छोड़कर वर्ग की विशेषताओं के साथ वैयक्तिक गुणावगुणों का समन्वय मिलता है। `तीन वर्ष` के रमेश, प्रभा, `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के रामनाथ तिवारी, झगड़ू मिसिर, `आखिरी दाँव` के रामेश्वर और चमेली, `भूले बिसरे चित्र` के शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, यमुना, `सामर्थ्य और सीमा` के मेजर नाहरसिंह, `सीधीसच्ची बातें` के जगतप्रकाश, अनुराधा, कुसुम, `सबहिं नचावत राम गोसाईं` के राधेश्याम, उदयराज, शिवकुमार गाबड़िया आदि पात्रों में क्या उनके वर्ग और जाति की विशेषताएँ नहीं हैं? इन सभी पात्रों के चरित्र में उनके वर्ग और जाति की सामान्य प्रवृत्तियाँ स्पष्टरूप से परिलक्षित होती है, किन्तु साथ-साथ उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व को भी वर्मा जी ने पर्याप्त महत्व दिया है। वर्मा जी की समाज-सापेक्ष जीवन-दृष्टि का प्रतिबिंबन उनके पात्रों में भी हुआ है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की व्यक्ति परकता की चर्चा करते हुए एक समीक्षक ने लिखा है -`इसका सर्वाधिक क्षीण रूप भगवतीचरण वर्मा में है ---- व्यक्ति और समाज के द्वैत से आरम्भ कर वर्मा जी `टेढ़े मेढ़े रास्ते` में समाज की प्रधानता सिद्ध करते हैं। वर्मा जी की दृष्टि में यह व्यक्ति-परकता `पतन` में भी नहीं थी, उनके परवर्ती उपन्यासों में भी नहीं है। केवल `चित्रलेखा` और `तीन वर्ष` में ही उसके दर्शन होते हैं।`[1] विद्वान् समीक्षक का यह मत सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। वर्मा जी के `सीधी सच्ची बातें` और `प्रश्न और मरीचिका` के जगत-प्रकाश और उदयराज, जो क्रमश: जीवन में असफलता और निराशा के दंश का अनुभव कर

1- हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव- डॉ० भारतभूषण अग्रवाल, पृ० 247

जीवन छोड़ देते हैं और निराशा की घुटन से मुक्ति पाने के लिए मदिरा का अवलम्ब लेते हैं, भी समाज के सुख-दुख से अपने को अलग नहीं कर पाते । जगतप्रकाश अपने परिवार और इष्ट-मित्रों से शनै: शनै: विलग होते हुए अंदर अन्दर-ही-अन्दर इतना टूट जाता है कि जमील अहमद के पाकिस्तान जाने के सदर्भ को सहन नहीं कर पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार उदयराज सामाजिक और राजनीतिक विकृतियों के जहर को पीते-पीते विषाद से भर उठता है, किन्तु परिवार की ममता उसे अपने 'विकृतियों से भरे देश' से चिपके रहने के लिए विवश कर देती है । वर्मा जी के पात्रों की वैयक्तिकता का पर्यवसान अधिकांशत: सामाजिकता में ही होता है, अर्थात् पात्रों का वैयक्तिक वैशिष्ट्य अपने सम्पर्क में आनेवाले लोगों को प्रभावित किए बिना नहीं रहता । उदाहरण 'चित्रलेखा' से ही लें, जिसमें सर्वाधिक वैयक्तिकता है । 'चित्रलेखा' नारी मनोग्रंथि का प्रकाशन करती है, किन्तु उसका प्रभाव उसके सम्पर्क में आनेवाले बीजगुप्त, कुमारगिरि और श्वेतांक- तीन पुरुषों पर पड़ता है । इस दृष्टि से वर्मा जी प्रेमचन्द और अपने परवर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के बीच अवस्थित हैं । वर्मा जी ने अपने कई उपन्यासों में पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण मानवीय गुणों तथा मनोविकारों के प्रक्षेपण को आधार बनाकर किया है । 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के रामनाथ के व्यक्तित्व का मुख्य आधार उनकी अहम्मन्यता ही है । 'चित्रलेखा' और रेखा नारी के रूप-गर्व की मनोग्रंथि से पीड़ित नारियाँ हैं । चित्रलेखा में वासना की अपेक्षा रूप-गर्व की प्रेरणा प्रबल है और रेखा की मनोग्रंथि विकृत काम-कुण्ठा का रूप धारण कर लेती है । 'प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में इस तरह की कोई मनोवृत्ति पात्र के व्यक्तित्व का मुख्य और एकमात्र आधार नहीं बनायी गयी है' [1] और अज्ञेय, इलाचन्द जोशी एवं जैनेन्द्र के पात्रों में ऐसी मनोग्रंथियों का बाहुल्य देखा जा सकता है ।

चरित्र-चित्रण प्रणाली की दृष्टि से भी वर्मा जी मध्यम मार्ग अपनाते हैं । जहाँ वे प्रेमचन्द की भाँति पात्रों के औपचारिक परिचय, घटनाओं कथोपकथन एवं नामकरण आदि के द्वारा चरित्र-चित्रण करते हैं, वहीं पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व , आन्तरिक संवेदनाओं के उद्घाटन के द्वारा भी पात्रों के व्यक्तित्व को निखारते हैं । मनोजगत् के चित्रण की चरम परिणति अज्ञेय आदि कथाकारों में मिलती है । वर्मा जी के कथा-साहित्य के चरित्र-चित्रण

1- हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन-डॉ० गणेशन, पृ० 237

की पद्धति की तुलना बहुत-कुछ `अश्क` की पद्धति से की जा सकती है। वर्मा जी `अश्क` की ही भाँति पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण करते हैं, किन्तु उसे अति तक पहुँचाकर अस्वाभाविक नहीं बनाते और न सैद्धांतिक मनोविज्ञान को आधार बनाकर उनके विश्लेषण में पृष्ठ-के-पृष्ठ रंग डालते हैं। वे दो-चार मुख्य-मुख्य बातों के द्वारा पात्रों के सम्पूर्ण भावों को व्यक्त कर देते हैं। वर्मा जी पात्रों के मनोजगत् की हलचल को चित्रित करने के लिए प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु और उपेन्द्रनाथ `अश्क` की भाँति व्यावहारिक या समान्य मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण करते हैं। ये सभी लेखक अपनी गहन अनुभूति एवं संवेदना के आधार पर पात्रों की अंतरात्मा से साक्षात्कार कर लेते हैं और पात्रों की अन्तर्बाह्य स्थिति को ज्यों का त्यों उतार कर रख देते हैं। इसी पद्धति से वर्मा जी ने रेखा, प्रभाशंकर, चित्रलेखा, श्यामला, रामनाथ तिवारी आदि पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यंजित किया है। `रेखा` में तो स्पष्टत: द्विविध वृत्तियाँ चलती रहती हैं। पहले वह अपनी काम विकृति के उन्माद में अपराध कर डालती है, फिर अपनी भारतीय संस्कारों एवं विवेक-बुद्धि के कारण पछताती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी की दृष्टि में पात्र और उनसे सम्बंधित कथा का अन्योन्याश्रित सम्बंध है कथा की रोचकता एवं स्वाभाविकता की बलि चढ़ाकर वह पात्रों की सृष्टि नहीं करते और न पात्रों के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध करके कथा का निर्माण करते हैं। जब पात्रों के स्वभाव में विशेष अंतर दिखलाना वर्मा जी को अभीष्ट होता है तो वे उसके अनुकूल स्थितियों का निर्माण भी कर लेते हैं। इस प्रकार वर्मा जी ने कथा और चरित्र में समुचित सामंजस्य स्थापित करके अपने कथा-साहित्य को एक वैशिष्ट्य प्रदान किया है।

भाषा की दृष्टि से विचार किया जाय तो वर्मा जी की भाषा प्रसाद के उपन्यासों की काव्यमय भाषा से भिन्न है। कविता का संगीत उनकी `चित्रलेखा` में ही मिलता है। उनके अन्य उपन्यास एवं कहानियों की भाषा मुंशी प्रेमचन्द की भाषा की भाँति उर्दू मिश्रित तथा कहावतों एवं मुहावरों से युक्त है। उसमें गद्य की गति एवं प्रवहमयता है, जो स्थिति एवं पात्र के अनुसार अपना रंग बदल-बदलकर पाठक को अपने साथ बहाये भी लिए जाती है और अपने सतरंगी प्रभाव से पाठक का मन मोह लेती है। वर्मा जी की भाषा में कुछ राजनीतिक या दार्शनिक वाद-विवाद के स्थल छोड़कर अपार व्यंजकता एवं संवादात्मकता मिलती है। वर्मा जी की भाषा में न एकरसता है और न संस्कृत, उर्दू एवं अंग्रेजी-बहुलता के लिए कोई आग्रह। इसी प्रकार कोमलता-परुषता का भी कोई विशेष लहजा नहीं है। पात्रों के भाव एवं मानसिक-सामाजिक स्तर के अनुकूल उसमें स्वयमेव परिवर्तन

होता है । भाषा की व्यंजकता पर बल देते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने उच्च श्रेणी के साहित्य में वाणी के मौन रहने की आवश्यकता बतायी थी, तब प्रेमचन्द ने उसका विरोध किया था -' जहाँ वाणी ब मौन रहती है, वह साहित्य है ? वह साहित्य नहीं, गूंगापन है ।'[1] वर्मा जी की शैली वर्णन-प्रधान होकर भी व्यंजकता के गुण को समाहित किए है । उनके कथा-साहित्य में ऐसे अनगिनत स्थल देखे जा सकते हैं, जहाँ वर्मा जी ने थोड़ा कहते हुए भी बहुत कह दिया है । जैनेन्द्र और अज्ञेय की भाषा यद्यपि अधिकांशत: सांकेतिक एवं व्यंजनापूर्ण रही है तथापि इन कथाकारों ने कहीं-कहीं मर्यादा का उल्लंघन करके भी पात्र की प्रत्येक धड़कन को स्पष्ट कर देना चाहा है । उदाहरणस्वरूप 'सुनीता' में हरिप्रसन्न के समक्ष सुनीता के निर्वसन होने की घटना को लें, ऐसे स्थलों पर वर्मा जी ने मर्यादा का निर्वाह करते हुए व्यंजनापूर्ण भाषा में दृश्यों को साकार कर दिया है । वर्मा जी की भाषा अज्ञेय की काव्यात्मक एवं संस्कृतनिष्ठ भाषा एवं जैनेन्द्र की संक्षिप्त एवं आयासपूर्ण भाषा से पर्याप्त भिन्न है । इस दृष्टि से वह प्रेमचन्द की भाषा के काफी निकट पड़ती है, परन्तु उसमें उनकी मौलिक अभिव्यक्ति क्षमता की गूँज बराबर सुनाई देती है ।

वर्मा जी की कहानियों के मुख्य विषय प्रेम, काम और अर्थ रहे हैं, किन्तु उनमें 'सेक्स' का नग्न चित्रण वर्मा जी को अभिप्रेत नहीं है । शहरी जीवन की अर्थ और काम-सम्बंधी विभिन्न समस्याओं का चित्रण वर्मा जी की कहानियों का लक्ष्य रहा है और उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है । उनकी कहानियों का क्षेत्र प्रेमचन्द की भाँति व्यापक नहीं रहा है, किन्तु मानव-मन की छोटी-छोटी प्रवृत्तियों को लेकर भी उन्होंने सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं । उनकी कहानियों में एक ही विषय का वैविध्यपूर्ण एवं यथार्थ प्रस्तुतीकरण दर्शनीय है । इस दृष्टि से वर्मा जी और अमृतलाल नागर में पर्याप्त समता है । नागर जी भी जीवन के अत्यंत सच्चे संदर्भों को चुनकर सम्पूर्ण सत्यता से अभिव्यक्त कर देते हैं, किन्तु नागर जी की कहानियों का क्षेत्र मुख्यत: एक विशिष्ट अंचल का निम्नमध्यवर्गीय जीवन रहा है, जबकि वर्मा जी की कहानियों में ('पियारी' 'खिलावन का नरक' आदि तीन चार कहानियों को छोड़कर) उच्च मध्य वर्ग एवं उच्च वर्ग ही चित्रित हुआ है । वर्मा जी की कहानियों में प्रेमचन्द की भाँति मनोग्रंथियों एवं मनोविकारों का चित्रण रोचक कथा के माध्यम से किया गया है, गंभीर विचारों ने उनकी कहानियों को बोझिल नहीं बनाया है । प्रेमचन्दोत्तर कहानीकार जैनेन्द्र की भाँति उनका विचारवाला व्यक्तित्व सर्जक वाले व्यक्तित्व पर हावी नहीं हुआ है ।

1- हिन्दी साहित्य :बीसवीं शताब्दी-आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ० 107

प्रेमचन्द के अतिरिक्त वर्मा जी बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार शरतचन्द्र से भी प्रभावित रहे हैं। उनके 'तीन वर्ष' शीर्षक उपन्यास पर तो शरतचन्द्र के 'देवदास' की छाया स्पष्ट है। वेश्याओं की शारीरिक अपवित्रता को पीछे छोड़ उनके मन की पवित्रता एवं उदारता की स्थापना करने की प्रवृत्ति पर शरतचन्द्र का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है। वेश्या तथा अन्य शरीर-भ्रष्ट किन्तु शुद्ध हृदया नारियों को समाज में सम्मानित स्थान देने का आग्रह वर्मा जी के अन्तिम उपन्यास 'प्रश्न और मरीचिका' तक में विद्यमान हैं। इसी प्रकार वर्मा जी ने अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' के सृजन की प्रेरणा पाश्चात्य उपन्यासकार अनातोल फ्रांस की 'थाया' से ग्रहण की, किन्तु विशेष ध्यान देने के योग्य बात यह है कि इन सब महान कलाकारों के प्रभाव को ग्रहण कर वर्मा जी ने अपने निजी कलाकार को कुंठित नहीं होने दिया वरन् महान विभूतियों की प्रभाव-रश्मियों ने वर्मा जी के प्रतिभा-सूर्य को अधिक दीप्ति प्रदान की है, उनके उपन्यासों की चमक उधार नहीं ली गयी है, वह स्वत: प्रस्फुटित है। यह दूसरी बात है कि उसमें अन्य कलाकारों के प्रभाव से कुछ अधिक निखार आ गया है।

वर्मा जी प्रेमचन्द और प्रेमचन्द-परवर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के मध्य की कड़ी हैं। उनके समकालीन कथाकारों में वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', अमृतलाल नागर, जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द जोशी एवं अज्ञेय आदि प्रमुख हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वर्मा जी के कथा-शिल्प में प्रेमचन्दीय शिल्प की झलक मिलती है और अपने समकालीन कथाकारों से भी कुछ साम्य दृष्टिगत होता है, किन्तु उनकी कथा-कृतियों में उनके निजी संघर्षों, अनुभवों, अध्यवसाय, स्फुरण एवं सृजन-क्षमता का प्रतिबिम्बन हुआ है। उसमें वर्मा जी की आत्मा के संगीत की झंकृति स्पष्ट सुनी जा सकती है। उनकी मौलिक प्रतिभा ने उनके कथा-साहित्य को विशेष गरिमा एवं महत्ता प्रदान की है।

वर्मा जी के कथा-साहित्य का ठोस आधार उनके निजी जीवनानुभव रहे हैं। उनका चिन्तन-मनन एवं जीवन-दर्शन भी निजी अनुभव से निर्मित हुआ है। इसीलिए उनके विचारों में मानव-मन का स्पंदन स्पष्टत: ध्वनित होता है। उनके कुछ परवर्ती उपन्यासों में विषाद, निराशा और अनास्था के स्वर अधिक मुखर हुए हैं, किन्तु 'नियति' की अखंड शक्ति में उनका विश्वास दृढ़तर होता गया है। भारतीय समाज एवं राजनीति के ह्रासोन्मुखी स्वरूप को चित्रित करते समय उन्होंने कुछ भी छिपाने का यत्न नहीं किया है और न

ही कोई मानवतावादी या सुधारवादी संदेश की आवश्यकता समझी है फिर भी समाज की विकृतियों एवं गलित परम्पराओं पर व्यंग्य करते समय उनके उपन्यासों और कहानियों के पात्रों की आँखों में कुछ और भी झिलमिला उठता है, उसमें एक आदर्श समाज की स्थापना की आकांक्षा अवश्य छिपी रहती है ।

अद्य:पर्यन्त वर्मा जी अपने जीवन के बहत्तर बसन्त की मधुरिमा, शिशिर के कंपन एवं ग्रीष्म की जलन का अनुभव कर चुके हैं । भीषण जीवन संघर्षों में से उन्हें गुजरना पड़ा है, किन्तु उस उद्यमी `व्यक्ति` ने सफलता के चरम सोपान पर पहुँचकर भी विश्राम नहीं लिया है । अपने पचास वर्ष के साहित्यिक जीवन में उन्हें आलोचना का कड़वा घूँट भी पीना पड़ा है, किन्तु इस आलोचना-प्रत्यालोचना के विवाद से परे वे अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ते रहे हैं । अपने निजी प्रयत्न एवं लगन के द्वारा उन्होंने अपनी सफलता का मार्ग बनाया है ।

पाँच दशक के अंतराल में वर्मा जी के शिल्प और भाषा में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन तो नहीं आया है, किन्तु उनकी कला अधिक मँज गयी है, उसमें अधिक निखार आया है । उनकी जीवन-दृष्टि भी अपरिवर्तित एवं अटल रही है, वरन् उस सम्बंध में वर्मा जी अधिक दृढ़ हो गये हैं । वर्मा जी के कथा-साहित्य में एक विशेष देश-काल का चित्रण हुआ है, किन्तु मानव की चिरंतन वृत्तियाँ उसमें खूब उभरी हैं ; इसलिए पाठकों को चिरकाल तक आकर्षित करने की संभावना उसमें विद्यमान है । अपनी मौलिक प्रतिभा से वर्मा जी ने हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान उपलब्ध किया है और साहित्य के भण्डार को संपन्न किया है । भविष्य में उनसे असीम आशाएँ हैं ।

--